International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN : 2581-9925, Impact Factor: 6.882, Volume 05, No. 02(I), April - June, 2023, pp. 14-20

आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन में डॉ. भीमराव रामजी अम्बेडकर का योगदान

डॉ. विक्रम सिंह*

प्रस्तावना

आधुनिक भारत में सामाजिक न्याय की स्थापना व दलित वर्गों के उत्थान के प्रति प्रतिबद्धता के प्रतीक के रूप में डॉ. भीमराव अम्बेडकर का नाम लिया जाता है।

भीमराव अम्बेडकर का जन्म 14 अप्रैल, 1891 को महू छावानी में हुआ था। इनके पिता का नाम रामजी सकपाल, एवं मां का नाम भीमाबाई था। उनका परिवार महाराष्ट्र के रत्नगिरी जिले के खेडा तालुके के एक छोटे से गांव अम्बवडे का रहने वाला था। भीमराव के नाम के साथ जुड़ा कुलनाम अम्बेडकर मूलतः उनके ग्राम अम्बवडे से जुड़ा हुआ था। गांव के नाम पर आधारित, कुलनाम 'अम्बवडेकर' को बाद में उनकी स्कूल शिक्षा के दिनों उनके एक प्रिय शिक्षक द्वारा अम्बेडकर कर दिया गया।[1]

अम्बेडकर अपने पिता की 14वीं सन्तान थे। उनके पिता के 9 बच्चों की मृत्यु हो चुकी थी। जीवित सन्तानों में तीन पुत्र बालाराम, आनन्दराव तथा भीमराव थे; तथा दो पुत्रिया मंजुला और तुलसी थी। अम्बेडकर के पिता ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सेना से सेवा–निवृत होने के पश्चात महू से, महाराष्ट्र के कोकण जिले के गांव दापोली में आकर बस गये। दापोली में ही अम्बेडकर ने अपने भाई के साथ प्राइमरी स्कूल में प्रवेश ले लिया।

अम्बेडकर की शिक्षा के प्रति उनके पिता पूरी तरह समर्पित थे। अम्बेडकर अध्ययन के लिए रात को दो बजे तक जागते थे। तब उनके पिता भी उनके साथ जागते रहते थे।[2] 1907 में उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। बम्बई में महाराष्ट्र के प्रसिद्ध समाज सुधारक के.ए. कैलूस्कर व एस.के. बोले के नेतृत्व में हुई एक बैठक में अम्बेडकर की प्रशंसा की गई। कैलूस्कर ने अम्बेडकर को उनकी नई पुस्तक 'दी लाइफ ऑफ गौतम बुद्धा' भी भेंट की। उन्होंने ही अम्बेडकर की बड़ौदा के महाराजा से भेंट कराई। महाराजा अम्बेडकर से बातचीत करके अत्यन्त सन्तुष्ट हुये और उन्होंने उच्च शिक्षा के लिए उन्हें 25 रूपये प्रतिमाह की छात्रवृत्ति देना स्वीकार कर लिया। जून, 1913 में वे उच्चतर अध्ययन के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका चले गये। 1915 में उन्होंने कोलम्बिया विश्वविद्यालय से मास्टर ऑफ आर्ट्स की उपाधि प्राप्त की। 1917 में उन्होंने कोलम्बिया विश्वविद्यालय से ही 'नेशनल डिविडेण्ड ऑफ इण्डिया–इन हिस्टोरिक एण्ड एनेलिटिक स्टेडी' शीर्षक शोध प्रबन्ध पर पी–एच.डी. की उपाधि प्राप्त की इसके पश्चात वे लन्दन आ गये और वहाँ उन्हें विधि के अध्ययन के लिए दी ग्रेज–इन' में तथा अर्थशास्त्र के अध्ययन के लिए लन्दन स्कूल ऑफ इकोनोमिक्स एण्ड पॉलिटिकल साइन्स' में प्रवेश ले लिया।

अम्बेडकर अगसत, 1917 में बम्बई वापस आ गये। बड़ौदा राज्य में हुए अनुबन्ध के अनुसार उन्हें अब 10 वर्षों तक बड़ौदा राज्य की सेवा की।

अप्रैल 1923 में अम्बेडकर वापस आ गये। वहां उन्होंने बैरिस्टर के रूप में वकालत प्रारम्भ करदी। वकालत में अपना व्यवसाय जमा लेने के पश्चात् उन्होंने अस्पृश्यों की समस्या पर ध्यान केन्द्रित करना प्रारम्भ कर दिया और सार्वजनिक जीवन में रूचि लेने लगे।

* सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान, परिष्कार कॉलेज ऑफ ग्लोबल एक्सीलेंस, जयपुर, राजस्थान।

अमेरिका, ब्रिटेन और जर्मनी में अध्ययन करने के पश्चात् डॉ. अम्बेडकर में अदम्य साहस तथा आत्मविश्वास का विकास हुआ। जनवरी 1920 में उन्होंने 'मूक नामक' पत्रिका प्रारम्भ की, जिसके माध्यम से उन्होंने अछूतों की शोचनीय स्थिति की ओर सबका ध्यान आकर्षित कियां इसके बाद अप्रैल 1927 में 'बहिष्कृत भारत' मराठी पत्रिका का संचालन किया। उनकी सराहनीय सामाजिक सेवाओं के लिए उन्हें 1927 में बम्बई विधान परिषद का सदस्य मनोनीत किया गया। डॉ. अम्बेडकर विधान परिषद के बाहर भी सक्रिय थे।

राजनीतिक विचार

अम्बेडकर मुख्यतः सामाजिक न्याय के योद्धा थे। उन्होंने राज्य से जुड़े हुए सैद्धान्तिक प्रश्नों पर व्यवस्थित दृष्टि से विचार नहीं किया, तथापि वे एक उदारवादी राजनेता थे। उन्होंने राज्य के प्रयोजन, कार्यक्षेत्र, शासन के स्वरूप शासकीय शक्ति की मर्यादाओं तथा व्यक्तियों के अधिकारों के विषय में स्पष्ट व सटीक दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया।

राज्य का स्वरूप

अम्बेडकर ने राज्य के अस्तित्व के प्रयोजन और औचित्य पर उदारवादी दृष्टि से विचार किया। वे राज्य को एक अनिवार्य और उपयोगी संस्था मानते थे। किन्तु उनकी यह भी मान्यता थी कि राज्य की सत्ता को असीमित व अमर्यादित नहीं माना जा सकता।

वे सामाजिक शक्ति तथा व्यक्ति के व्यक्तित्व पर राज्य की निरंकुश शक्ति का नियन्त्रण स्थापित नहीं करना चाहते थे; किन्तु वे एक संगठित व्यवस्था तथा एक न्यायनिष्ठ सामाजिक प्रणाली के निर्वाह में राज्य की सकारात्मक भूमिका के महत्व को स्वीकार करते थे। उनका मत था कि राज्य का प्राथमिक दायित्व व्यक्तियों को सुरक्षा प्रदान करना तथा ऐसी व्यवस्था का निर्माण करना, जिसमें सभी व्यक्ति स्वतंत्रता के वरदानों का लाभ उठा सकें। विशेष कर आशान्ति और ब्रिदोह के समय इसका उत्तरदायित्व बढ़ जाता है। उन्होंने समाज को अधिक महत्व दिया, लेकिन राज्य का महत्व कम नहीं होता, उसका सबसे बड़ा कार्य ''समाज की आन्तरिक अव्यवस्था और बाह्य अतिक्रमण से रक्षा करना है।''[3] राज्य का अपना एक क्षेत्र है जिसमें उसकी गतिविधियां मान्य होती है, हालांकि डॉ. साहेब राज्य को निरपेक्ष शक्ति के रूप में नहीं मानते थे। उसका स्थान गौण है। उन्होंने कहा, ''किसी भी राज्य ने एक ऐसे अकेले समाज का रूप धारण नहीं किया जिसमें सब कुछ आ जाए या राज्य की प्रत्येक विचार एवं क्रियाका स्त्रोत हो।''[4] वह राज्य व्यवस्था को मानव हित की सेवा के दृष्टिकोण से देखते थे। राज्य जन–साधरण की सेवा का एक सशक्त माध्यम है। डॉ. अम्बेडकर ने कहा, ''राजनीतिक समुदायों को उत्पन्न करने, उनकी अच्छी दिशा में ढ़ालने, उनको विस्तृत रूप देने तथा उनको एकत्रित करने में दबाव से अधिक महत्वपूर्ण आज्ञापालन की भावना है। आज्ञा पालन की भावना जो सरकार के कानूनों तथा नियमों के प्रति प्रदर्शित की जाती है, व्यक्ति और सामाजिक समुदायों की कुछ मनोवैज्ञानिक धारणाओं पर निर्भर करती है।''[5]

शासन का स्व्रूप व शासकीय शक्ति की मर्यादाएँ

अम्बेडकर ने सामान्यतः शासन की संसदीय पद्धति को उपयुक्त माना। उनके अनुसार शासन की वह पद्धति उपयुक्त है जिसमें कार्यपालिका स्वयं को इतना सक्षम तो अनुभव करे कि वह अपने कार्यक्रमों व नीतियों को बिना गतिरोधक` क्रियान्वित कर सके, किन्तु साथ ही शासन की प्रणाली में ऐसी संस्थागत और प्रक्रियागत व्यवस्था हो कि कार्यपालिका अपनी शक्ति का दुरूपयोग नहीं कर सके। इस दृष्टि से वे शासन की प्रणाली में अवरोध और सन्तुलन के सिद्धान्त को सुनिश्चित करने पर बल देते हैं। उनका मत था कि शासन की ऐसी प्रणाली अपनायी जानी चाहिए जो शक्तियों के विभाजन पर आधारित हो और जिसमें कार्यपालिका, व्यवस्थापिका और न्यायपालिका की शक्तियां एक जगह केन्द्रित न हो।

वे शासन की प्रणाली में, व्यक्तियों को कार्यपालिका की निरंकुशता से ही मुक्त रखना नहीं चाहते थे, अपितु यह भी अपेक्षा करते थे कि बहुमत, अल्पसंख्यक वर्ग पर अपनी निरंकुश इच्छाएं आरोपित नहीं कर सके। एक उपयुक्त शासन प्रणाली के सम्बन्ध में अपने दृष्टिकोण के सार को अम्बेड़कर ने निम्नलिखित रूप से सूत्रबद्ध किया।[6]

- बहुमत को सरकार बनाने का अवसर हो, किन्तु यह सुनिश्चित किया जाये कि शासकीय कार्यों में अल्पसंख्यकों के मत व मन्तव्यों की उपेक्षा नहीं की जाये;
- प्रशासन पर केवल बहुमत का सम्पूर्ण नियन्त्रण नहीं हो, तथा ऐसे उपाय किये जाएं कि बहुमत द्वारा अल्पमत पर अपनी निरंकुश इच्छाएं थोपी नहीं जा सकें;
- बहुमत के आधार पर कार्यपालिका का गठन करने वाले दल पर यह प्रतिबन्ध हो कि वह अल्पसंख्यकों को ऐसे प्रतिनिधियों को कार्यपालिका में सम्मिलित न करे, जिन्हें अल्पसंख्यकों में विश्वास नहो;
- कार्यपालिका की स्थिरता को सुनिश्चिता किया जावे ताकि प्रशासन को अच्छी रीति और दक्षता के साथ चलाया जा सके;
- कार्यपालिका अपने अधिकारों के क्षेत्र का अतिक्रमण न कर सके, इस दृष्टि से उस पर यह प्रतिबन्ध हो कि वह विधायका द्वारा दिये गये निर्देशों तथा पारित विधि के अनुरूप ही अपनी शक्ति का प्रयोग करें;
- कार्यपालिका व विधायिका दोनों ही अपनी सीमाओं का अतिक्रमण न कर सके, इस दृष्टि से न्यायपालिका को कार्यपालिका व विधायिका के नियन्त्रण से मुक्त रखा जाये, तथा उसे कार्यपालिका तथा विधायिका द्वारा किये गये कृत्यों की समीक्षा का अधिकार प्राप्त हो।

लोकतंत्र

अम्बेड़कर ने लोकतंत्र की पश्चिमी विद्वानों द्वारा की गई परिभाषाओं को अपूर्ण और अस्पष्ट बताया। उनका मत था कि पश्चिमी विद्वानों ने लोकतंत्र को प्रायः शासन की ऐसी पद्धति के रूप में परिभाषित किया है, जिसमें शासन की शक्ति व्यवहारिक रूप में जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों के हाथों में, तथा सैद्धान्तिक दृष्टि से जनता में निहित मानी जाती है।

अम्बेडकर का मत था कि लोकतंत्र का मर्म केवल शासन के निकायों पर जनता के प्रतिनिधियों के नियन्त्रण में निहित है। उनके अनुसार वास्तविक लोकतंत्र वह है जहां शासन की शक्ति में जनता के सभी वर्गों की भागीदारी को सुनिश्चित किया जा सके। इस प्रकार उनके मत में सामाजिक लोकतंत्र राजनीतिक लोकतंत्र की पूर्व–शर्त है। उन्होंने लोकतंत्र को परिभाषित करते हुए कहा कि ''वह शासन की ऐसी पद्धति है, जिसके द्वारा लोगों के सामाजिक और आर्थिक जीवन में, बिना रक्तपात के क्रान्तिकारी परिवर्तन लाये जा सकें।''[7]

अम्बेडकर के अनुसार लोकतान्त्रिक शासन पद्धति में दो तथ्यों का समावेश अनिवार्य है। प्रथम विधि का शासन तथा द्वितीय – सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों के प्रति आस्था ताकि सामुदायिक जीवन को सामाजिक और आर्थिक न्याय के आदर्शों के अनुकूल बनाया जा सके।

डॉ. अम्बेडकर संसदात्मक सरकार के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने माना कि ब्रिटेन में जिस प्रकार की संसदीय प्रणाली है, वह भारत में उपयुक्त रहेगी। संसदीय प्रणाली भारत के लिए कोई नवीन बात नहीं है। भारत में कई ऐसे काल आए, जबकि जनतंत्र प्रणाली प्रचलित थी, पर कालान्तर में वह लुप्त हो गई। डॉ. अम्बेडकर ने कहा, ''आज संसदीय सरकार की बात हमारे लिए विदेशी प्रतीत होती है। यदि हम गाँवों में जायें तो मालुम होगा कि लोग यह नहीं जानते कि वोट क्या हैं? पार्टी क्या हैं? जनतंत्र प्रणाली उन्हें विचित्र प्रतीत होती है। इसलिए हमारे सामने यह समस्या है कि इस प्रणाली को कैसे बचाया जाये। जनता को हमें शिक्षित बनाना है और उसे संसदीय जनतंत्र तथा संसदात्मक सरकार के लाभ बताने हैं।''[8]

अम्बेडकर ने भारत में संसदीय प्रजातंत्र को अपनाए जाने से पूर्व ऐसे सांविधानिक प्रावधानों की आवश्यकता अनुभव की जो सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों के लिए शासन को वचनबद्ध बनाएं, और सामाजिक व आर्थिक प्रजातंत्र की समस्या के प्रति शासन का समर्पण, संसद में बहुमत प्राप्त करने वाले दल की सदिच्छा मात्र पर निर्भर न रहे। संविधान की प्रस्तावना में सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक न्याय को सुनिश्चित करने के संकल्प की अभिव्यक्ति, तथा राज्य के नीति निर्देशक तत्वों के माध्यम से एक समतामय और शोषण मुक्त समाज की स्थापना के लिए राज्य के दायित्वों की घोषणाएं, संसदीय प्रजातंत्र के सुधारवादी स्वरूप के प्रति अम्बेडकर के आग्रह को प्रतिध्वनित करते हैं।

अम्बेड़कर ने भारत में संसदीय प्रजातंत्र को अपनाए जाने से पूर्ण ऐसे सांविधानिक प्रावधानों की आवश्यकता अनुभव की जो सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों के लिए शासन को वचन–बद्ध बनाएं और सामाजिक व आर्थिक प्रजातंत्र की स्थापना के प्रति शासन का समर्पण, संसद में बहुमत प्राप्त करने वाले दल की सदिच्छा मात्र पर निर्भर न रहे। संविधान की प्रस्तावना में सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक न्याय को सुनिश्चित करने के संकल्प की अभिव्यक्ति तथा राज्य के नीति निर्देशक तत्वों के माध्यम से एक समतामय और शोषण मुक्त समाज की स्थापना के लिए राज्य के दायित्वों की घोषणाएं, संसदीय प्रजातंत्र के सुधारवादी स्वरूप के प्रति अम्बेडकर के आग्रह को प्रतिध्वनित करते हैं।

लोकतंत्र की सफलता की आवश्यक शर्ते

अम्बेडकर भारत के लिए लोकतांत्रिक पद्धति को सर्वश्रेष्ठ मानते थे। किन्तु वे इस बात से अत्यन्त क्षुब्ध थे कि भारत में विद्यमान परिस्थितियां, लोकतांत्रिक प्रणाली के लिए उपयुक्त नहीं है। उनका मत था कि भारतीय सामाजिक प्रणाली में परम्परागत रूप से सामाजिक असमानता, शोषण और अन्याय को प्रश्रय दिया जाता रहा है। उन्होंने भारतीय सामाजिक व्यवस्था विद्यमान इस तथ्य को लोकतांत्रिक शासन के मार्ग में एक बड़ी बाधा बताया कि इसमें समुदाय के दो बड़े वर्गों–दलितों व स्त्रियों को सामाजिक व राजनीतिक अधिकारों से वंचित करके उन्हें वस्तुतः सामाजिक व राजनैतिक जीवन की मुख्यधारा से अलग–थलग पटक दिया गया है।

उन्होंने भारत में विद्यमान व्यक्ति–पूजा की मनोवृत्ति को भी लोकतांत्रिका दृष्टिकोण के विकास में बाधक बताया। उन्होंने कहा ''दुर्भाग्वश, परम्परा से भारतीय लोग ऐसे हैं, जिनमें चातुर्य की अपेक्षा आस्था अधिक है। यदि कोई ऐसा कार्य करने जो साधारण से भिन्न हो, अथवा कोई ऐसा अजूबा करले जिसके कारण अन्य देशों में उसे पागल कहा जा सकता हो, उसे इस देश में महात्मा या योगी का दर्जा दे दिया जाता है, और लोग उसका ऐसे अनुसरण करने लगते हैं जैसे भेड़ें चरवाहे का। मेरा यह निश्चितम त है कि जब तक यह प्रवृत्ति बनी रहती है, तब तक देश में राजनैतिक विकास का कोई लाभ नहीं है।''[9]

अम्बेडकर ने भारतीय समाज में विद्यमान जाति प्रथा को लेकर लोकतंत्र के मार्ग में एक बड़ी बाधा बताया। उन्होंने कहा कि जाति प्रथा के कारण समाज में असमानता को संस्थागत समर्थन प्राप्त हो गया है, और राजनीतिक संस्थाओं से परे सामाजिक जीवन में ही कुछ व्यक्तियों को शासक व कुछ को शासित का दर्जा प्राप्त हो गया है।[10]

अम्बेडकर का मत था कि भारत में संसदीय प्रजातंत्र की सफलता के लिए सामाजिक व्यवस्था में से उपर्युक्त दोषों का निराकरण किया जाना आवश्यक है।

अम्बेडकर ने भारत में लोकतंत्र के सफल कार्यकरण के लिए अग्रांकित पूर्व–शर्तों को आवश्यक बताया :

- **सामाजिक लोकतंत्र की स्थापना –** अम्बेडकर ने भारत में राजनीतिक लोकतंत्र की स्थापना के लिए सामाजिक लोकतंत्र की स्थापना को पूर्व शर्त माना। सामाजिक लोकतंत्र के लिए उन्होंने जाति–प्रथा और अस्पृश्यता के उन्मूलन को आवश्यक माना। उन्होंने कहा – ''सफल लोकतंत्र के कार्यकरण के लिए यह आवश्यक है कि समाज में गम्भीर असमानताऐं न हों, कोई दलित वर्ग न हो, कोई शोषित वर्ग न हो, कोई ऐसा वर्ग न हो जिसके पास समस्त विशेषाधिकार हो, कोई ऐसा वर्ग न हो जिसके कन्धों पर समस्त प्रकार के प्रतिबन्धों का बोझ हो। जब तक समाज में ऐसी स्थितियाँ विद्यमान है तब तक सामाजिक संगठनों में खूनी क्रांति के बीज विद्यमान है, और सम्भवतः लोकतंत्र के लिए उनका निराकरण करना सम्भव नहीं है।''[11]

अम्बेडकर ने दलित और शोषित, वर्गों के लिए सांविधानिक और कानूनी संरक्षणों की घोषणा को सामाजिक लोकतंत्र की स्थापना के लिए आवश्यक माना। उनका मत था कि इन सांविधानिक संरक्षणों के माध्यम से दलित वर्ग उनसे जुड़ी सामाजिक निर्योग्यताओं से उबर सकेंगे, और वे संविधान द्वारा दिये गये मौलिक अधिकारों का वास्तव में उपयोग कर सकेंगे।

भारत को राजनीतिक आजादी मिली और यहां राजनीतिक जनतंत्र की स्थापना भी की गई। लेकिन जैसा कि डॉ. अम्बेडकर ने कहा, भारतीयों को मात्र राजनीतिक जनतंत्र से ही सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहिए, ''हमें साथ ही अपने राजनीतिक जनतंत्र को एक सामाजिक जनतंत्र भी बनाना चाहिएं राजनीतिक जनतंत्र अधिक दिनों तक आगे नहीं बढ़ सकता यदि उसका आधार सामाजिक जनतंत्र नहीं होता है। सामाजिक जनतंत्र का क्या अर्थ है? इसका मतलब एक जीवन पद्धति है, जो स्वतंत्रता, समानता और भातृ–भाव को जीवन के आदर्शों के रूप में स्वीकार करती है। स्वतंत्रता, समानता और भातृ–भाव के इन आदर्शों को एक–त्रयी के पृथक–पृथक मुद्दों के रूप में नहीं समझना चाहिए। वे इस अर्थ में एक–त्रयी की एकता का निर्माण करते हैं कि उन्हें एक दूसरे से पृथक करना, जनतंत्र के मूल उद्देश्यों को ही परास्त करना है।''[12]

अम्बेडकर ने भारत में विद्यमान सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक विभिन्नताओं में समन्वय स्थापित करके एक एकताबद्ध सामाजिक प्रणाली की स्थापना के लिए धार्मिक विश्वासों, सामाजिक परम्पराओं और रीति–रिवाजों आदि में से कट्टरता, संकीर्णता और रूढ़िवादिता को समाप्त करने की आवश्यकता अनुभव की तथा सभी नागरिकों के लिए एक समान नागरिक संहिता लागू किये जाने, तथा धार्मिक व भाषायी सहिष्णुता को प्रोत्साहन देने पर बल दिया।

- **बहुदलीय प्रणाली और सक्षम विपक्ष –** अम्बेडकर ने बहुदलीय व्यवस्था को लोकतंत्र के लिए आवश्यक माना। उन्होंने कहा कि जब तक जनता के हाथों में एक दल को सत्ता से हटाकर दूसरे दल को सत्ता सौंप देने का विकल्प न हो, तब तक लोकतान्त्रिक शासन का कोई अर्थ नहीं है। इस दृष्टि से उन्होंने बहुदलीय प्रणाली को लोकतंत्र की सफलता के लिए आवश्यक माना।

अम्बेडकर के अनुसार एक सक्षम विपक्ष भी लोकतंत्र के लिए अनिवार्य है, सक्षम विपक्ष ही वस्तुतः शासन की कमजोरियों को उजागर करता है, तथा वह उसे जनता के हितों व अधिकारों के प्रति संवेदनशील बनाये रखता है। अम्बेड़कर के अनुसार लोकतंत्र में जनता तो केवल अगले आम चुनावों में शासन के क्रियाकलाप पर अपना मूल्यांकन व्यक्त कर सकती है; सरकार को निरन्तर सजग रखना, तथा उसे जनहित के प्रति समर्पित रखना वस्तुतः विपक्ष का कार्य होता है; अम्बेडकर के अनुसार सशक्त और जागरूक विपक्ष के कारण सरकार को अपने प्रत्येक कार्य का औचित्य उन लोगों के समक्ष सिद्ध करना होता है जो कि उसके दल के सदस्य नहीं हैं।[13]

- **प्रशासन की राजनैतिक तटस्थता –** अम्बेडकर का निश्चित मत था कि सरकार के परिवर्तन के साथ ही प्रशासन में परिवर्तन स्वस्थ लोकतंत्र के लिए घातक हैं। उनका सुझाव था कि प्रशासन–तंत्र की स्थाई नियुक्ति की व्यवस्था होनी चाहिए, तथा प्रशासन को निष्पक्ष बनाए रखने के लिए प्रशासन के कार्मिक वर्ग को समुचित संरक्षण तथा सेवा–सुरक्षा के प्रति आश्वस्त किया जाना चाहिए।

उनका मत था कि सिविल सेवा को सरकार की स्थाई प्रशासनिक शाखा बनाया जाना चाहिए तथा यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि उसके सदस्य सत्तारूढ़ राजनैतिक दल के प्रति निष्ठा रखने की अपेक्षा, विधि के प्रावधानों के प्रति निष्ठा का निर्वाह करें।

- **बहुमत की निरंकुशता पर मर्यादाएँ –** अम्बेडकर का मत था कि लोकतंत्र में बहुमत पर मर्यादायें रखी जानी चाहिए ताकि वह अल्पमत को कुचल न सके। शासन की ऐसी प्रक्रियाओं व परम्पराओं को अपनाया जाना चाहिए जिससे कि अल्पमत को कुचल न सके। शासन की ऐसी प्रक्रियाओं व परम्पराओं को अपनाया जाना चाहिए जिससे कि अल्पमत भी यह अनुभव करता रहे कि वह भी शासन व प्रशासन में भागीदारी निभा रहा है।
- **सांविधानिक नैतिकता का पालन –** अम्बेडकर का मत था कि देश का शासन, केवल संविधान की घोषणाओं से आदर्श स्वरूप नहीं करता। लोकतांत्रिक आदर्शों को तभी सुनिश्चित किया जा सकता है जबकि राजनैतिकदल और शासकीय निकायों को संचालित करने वाले व्यक्ति सांविधानिक नैतिकता के

प्रति पूरी तरह समर्पित हों। उनका मत था कि देश का संविधान केवल एक 'सूखा ढांचा' होता है जिसमें कि रक्त और मांस का संयोग राजनैतिक क्रिया–कलाप में संलग्न व्यक्ति सांविधानिक मूल्यों और नैतिकता के प्रतिनिष्ठा के पालन द्वारा करते हैं।

- **जनमत की जागरूकता –** अम्बेडकर का मत था कि जागरूक जनता ही लोकतंत्र की सफलता का सर्वाधिक विश्वसनीय आधार होता है। उनका मत था कि जब तक जनता अपने अधिकारों व कर्त्तव्यों के प्रति आश्वस्त रूप से जागरूक नहीं होती, तब तक लोकतान्त्रिक शासन के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ निर्मित नहीं हो सकतीं।

अधिकारों के प्रति दृष्टिकोण

अम्बेडकर मानव अधिकारों के प्रबल समर्थक थे उनका मत था कि नागरिकों के कतिपय अधिकारों को अनुल्लंघनीय माना जाना चाहिए तथा उनकी सांविधानिक प्रत्याभूति की जानी चाहिए। उन्होंने कहा कि संविधानों द्वारा केवल नागरिकों के अधिकारों की घोषणा पर्याप्त नहीं है, अपितु अधिकारों का अतिक्रमण होने पर उनकी सुरक्षा के लिए वैधानिक प्रावधान किये जाने आवश्यक हैं।

अम्बेड़कर ने इस तथ्य की ओर ध्यान आकृष्ट किया कि अधिकारों का प्रयोग समाज में रहकर किया जाता है, अतः अधिकारों के प्रति कानूनी संरक्षणों के साथ–साथ सामाजिक परिवेश भी प्रासंगिक होता है उनका मत है कि नागरिकों के अधिकारों की प्रभावी प्रत्याभूति अधिकारों के प्रति समाज की जागृत सहमति द्वारा ही की जा सकती है। उन्होंने कहा कि जब तक कि अधिकारों के पीछे समाज की नैतिक सम्मति न हो, तब तक संविधान की घोषणाएं, संसद के द्वारा बनाये गये कानून अथवा न्यायालय अधिकारों को कोई सम्बल प्रदान नहीं कर सकते।

सामाजिक और आर्थिक न्याय तथा सामुदायिक हितों की दृष्टि से भी व्यक्तियों के अधिकारों में हस्तक्षेप करने की शक्ति राज्य को प्रदान किये जाने के सम्बन्ध में वे सतर्कता बरतना आवश्यक मानते थे, ताकि व्यक्तियों के अधिकारों का सामाजिक नियमन करने के नाम पर राज्य मनमाने ढंग से अधिकारों का अतिक्रमण न कर सके।

निष्कर्ष

अम्बेडकर सामाजिक न्याय के उत्कट सेनानी थे। उन्होंने दलित वर्गों के उत्थान और उनके लिए जीवन की न्याय सम्मत और सम्मानजनक दशाएँ सुनिश्चित करने के अभियान के प्रति अपना जीवन समर्पित कर दिया। उन्होंने वैचारिक स्तर पर ही सामाजिक एवं आर्थिक न्याय की आवश्यकता का प्रतिपादन नहीं किया, अपितु भारतीय समाज में विद्यमान अन्याय के निराकरण के लिए संघर्ष में सक्रिय रूप से भाग लिया। उन्होंने जाति प्रथा, वर्ण व्यवस्था तथा हिन्दू धर्म की अनेक अन्यायपूर्ण मान्यताओं के प्रति विद्रोह का जो साहस प्रदर्शित किया वह आधुनिक युग में उनसे पूर्व कोई भारतीय विद्वान नहीं कर सका था।

वे विलक्षण विद्वान थे। हिन्दू धर्म और प्राचीन भारतीय ग्रन्थों की अनेक द्वारा की गई व्याख्याऐं गम्भीर गवेषणा और अनुशीलन पर आधारित थीं। अम्बेड़कर ने सामाजिक लोकतंत्र को राजनैतिक लोकतंत्र कीक पूर्व शर्त के रूप में प्रतिपादित कर भारत में लोकतंत्र की एक सार्थक और गतिशील परिकल्पना प्रस्तुत की।

वे मानव अधिकारों के महान समर्थक थे। उन्होंने व्यक्ति के अनुल्लंघनीय अधिकारों की सांविधानिक उद्घोषणाओं व अधिकारों के अतिक्रमण के विरूद्ध कानूनी उपचारों को सुनिश्चित करने तथ ऐसी उपयुक्त सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियों के निर्माण को महत्वपूर्ण माना जिनमें व्यक्ति के अधिकार सुरक्षित रह सकें। वे वास्तविक अर्थ में संविधानवादी थे तथा राज्य की शक्ति को मर्यादित करने के पक्ष में थे।

भारत के संविधान में उदारवादी लोकतंत्र के प्रति आस्था, सामाजिक व आर्थिक न्याय तथा धर्म निरपेक्ष के आदर्शों के प्रति प्रतिबद्धता, संविधान के निर्माण पर अम्बेडकर के उदारवादी व्यक्तित्व के प्रभाव को परिलक्षित करते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. धनंजयकीर, डॉ. अम्बेडकर, लाइफ एण्ड मिशन, पापुलर प्रकाशन, बम्बई–1962, पृष्ठ 14
2. उपर्युक्त, पृष्ठ 17–18
3. अम्बेड़कर स्टेट्स एण्ड मॉइनॉरिटिज, पृष्ठ–3
4. बी.आर. अम्बेडकर, पाकिस्तान और द पार्टीशन आफ इण्डिया, (थैकर एण्ड कम्पनी, बम्बई, 1946) पृष्ठ 330
5. उपर्युक्त पृष्ठ 293
6. अम्बेडकर, स्टेट्स एण्ड मॉइनॉरिटिज, पृष्ठ 38
7. उद्धत, चन्द्रा भारिल्ल, पूर्वोक्त, पृष्ठ 184
8. दस स्पोक अम्बेडकर, भाग प्रथम (भगवानदास द्वारा संकलित एवं संपादित, भीम–पत्रिका प्रकाशन जलधंर, 1963), पृष्ठ 51–52
9. टाइम्स ऑफ इण्डिया, 4 जनवरी, 1938
10. अम्बेडकर, प्रॉस्पेक्टस ऑफ पार्लियामेंटरी डेमोक्रेसी, वॉयस ऑफ अ मेरिका से 20 मई 1956 को प्रसारित वार्ता।
11. जी.एस. लेखाण्डे, भीमराव रामजी अम्बेडकर, ए स्टडी इन सोशल डेमोक्रेसी, पृष्ठ 24
12. ऑन द कॉन्स्टीटयूशन ऑफ इण्डिया, डॉ. अम्बेडकर द्वारा संविधान–सभा में दिया गया भाषण, दिनांक 25.11.1949
13. अम्बेडकर कन्डीशन्स प्रीसीडेन्ट फॉर सक्सेसफुल वर्किंग आफ पार्लियामेंटरी डेमोक्रेसी इन इण्डिया, पृष्ठ–9

❖◆❖